पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२

प्रश्नांतक

वैस्सिलिस विट्साक्सिस

संपादक : राजेन्द्र अवस्थी

कविताओं के बारे में

वैम्सिलिस विट्सासिस की कविताएं इतिहास नहीं है लेकिन वे मानव-चेतना के अतीत का स्पर्श करती दीखती हैं। कह सकते हैं कि उनका क्लासिकी आग्रह उन्हें इतिहास से जोड़ता है किन्तु इतिहास के लक्ष्य में और कविता के मर्म मे फ़र्क है। इतिहासवेत्ता महान संस्कृतियों के पुराने सूत्र घटनात्मक विवरणों, यात्राओं के गल्प-साहित्य एवं आदान-प्रदान के दूसरे बिन्दुओं मे खोजते है। एक तरह से वे अवशिष्ट पदार्थों के जरिये एक काल्पनिक अतीत की रचना करते है जबकि एक कवि कल्पना के औज़ारों का विवेकवान उपयोग करते हुए आत्मा की दुनिया का सृजन करता है। वस्तुत: वैम्सिलिस विट्सासिस अतीत के 'विकसित मानस' को, उसके द्वारा अन्वेषित सत्य के परिदृश्यों को चेतना के इतिहास के समानान्तर रचते हैं। आत्माहीन काल्पनिक संभावनाओं की जगह कल्पनारचित आत्मिक विश्वसनीयता कहीं अधिक अर्थमय होती है—इस सत्य का पता विट्सासिस की कविताएं देती है। स्पष्ट है उनकी कविताओं के महत्त्व का आधार स्वयं प्रासंगिक, अर्थमयता आलोकित करता है। कहना होगा एक सही कवि-कर्म की यह बुनियादी शर्त है। विट्सासिस की मानसिकता-अतीत और अधुनातन की निर्मिति है किन्तु उसकी रचनात्मकता पर यूनान की विगत संस्कृति की महानता का अदृश्य प्रभामंडल प्रतिबिंबित है। मूल देश का यह प्रभाव एक ओर स्वाभाविक है किन्तु जिस सजगता मे यह प्रतिफलित होता है उसे असाधारण ही कहा जायेगा। आश्चर्य का विषय यह है कि विट्सासिस दो महान संस्कृतियों से समान रूप से सामना करते है। दो भिन्न विचारधाराओं मे, जिनके सांस्कृतिक आदान-प्रदान की

कथाएं अब केवल इतिहास बन गयी हैं—उनकी कविताएं एक सेतु का काम करती हैं।

पूर्व और पश्चिम को इतिहास ने जिस रूप में अलगाये रखा है—उसके दृश्य रूप आज भी उपलब्ध हैं। सड़कें, रेलगाड़ियां और दूसरे संचार-साधन बेशक पूर्व और पश्चिम को जोड़ते हों लेकिन जीवन-पद्धतियां और भौतिक एवं आत्मिक विचारणाएं कहीं गहरे में वह अलगाव प्रस्तुत करती है। अर्थात् एक दृश्य समरूपता होते हुए भी भिन्नता के प्रारूप इतने स्पष्ट हैं कि कहना पड़ता है पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम। पश्चिम और पूर्व, सभ्यताओं के दो ध्रुव केवल पश्चिम में ही स्वीकार किये गये हैं—इसकी तुलना में पूर्व अधिक उदार, अधिक लचीला है और इसका कारण है पूर्वीय क्षितिजों का विचारदर्शन। विट्सासिस ने अपने काव्य विषयों में पूर्व और पश्चिम की समरूपता तो खोजी है, साथ-ही-साथ अनन्त और अनादि से जुड़े प्रश्नों से सामना किया है—यह सामना किसी सैलानी या अकादमीय वृत्ति का सामना नहीं है बल्कि देश-प्रदेश स्वार्थों के सारे आवरण हटा सिर्फ एक पारदर्शी आत्मान्वेषक का जूझना है।

पूर्व के प्रति पश्चिमी मानस का कौतूहल जैसी जिज्ञासा भी विट्सासिस की कविताएं नहीं हैं क्योंकि उस कौतूहल में एक निरपेक्षता अर्थात् दूरी होती है। पूर्व के प्रति यूनान का ममत्व कहना ज्यादा संगत होगा क्योंकि ममत्व में संलग्नता आत्मीयता के किस्म की होती है। अतः विटसाक्सिस एक भारतविद् होते हुए भी पश्चिमी भारतविदों से भिन्न हैं—यहां तक कि मैक्समूलर से भी भिन्न हैं। भारतविद् भारतविद्या में कुछ खोजते हैं, दृश्य रूप से वह चिन्ता भारत के प्राणतत्त्व को खोजने की होती है, परोक्ष रूप से वह पश्चिमी दंभ के जरिये भारत के आदिमत्व की खोज होती है। इस दृष्टि से विट्सासिस की भारत में दिलचस्पी, भारतीय देवी-देवताओं की पुनर्व्याख्या एक परम उन्नतिशील संस्कृति की 'चेतना' की पहचान की कोशिश है। वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ जिन्हें आज के संदर्भ में संगत देखने का काम भारत में जड़मति अतिवादियों के हाथ है और जो इस प्रयाग मे ज्यादा असंगत लगने लगते हैं—विट्सासिस की कविताएं शायद एक विधि प्रस्तुत करती हैं कि संस्कृति की इस धरोहर से क्या खोजा जाये।

आश्चर्य का ही विषय है कि कविताएं भी एक विधि की सृजना करती है—परन्तु विट्सासिस का जीवन-वृत्त विलक्षण किस्म के प्रमाण

जुटाता है। विट्साक्सिस विधिवेत्ता हैं, वे भौतिक समृद्धि के राष्ट्रों में प्रचलित कानून से पूरी तरह परिचित हैं किन्तु वे यूनान के मानवीय कानून के पक्षधर हैं। दूसरी ओर विट्साक्सिस कूटनीतिज्ञ हैं। संसार के दो बड़े प्रजातंत्रों यथा अमरीका और भारत में वे कूटनीति सेवाओं के नेता रहे हैं। एक राजदूत का काम राजसत्ताओं के बीच संतुलन बनाये रखने का होता है—इन दो भिन्न कर्म-क्षेत्रों में मानवीय ऊर्जा देने वाली कविताओं की भूमिका ही संभवतः विट्साक्सिस की सार्थक भूमिका है। वस्तुतः यही भूमिका स्वयं एक विधि, मनुष्य चेतना की पुरानी परम्पराओं के बीच से सार्थक चुनने की विधि का निर्माण करती है।

विट्साक्सिस की कविताओं में एक निष्पाप अबोधता है—

मेरा हृदय बहुत ही छोटा था
समुद्र के वक्ष जैसा नहीं
जो अपने में सभी नदियों, वर्षाओं
और ओस-बूंदों को
समग्र जल को समो लेता है
चाहे वह जहाँ से भी क्यों न आता हो।

'जीवन समुद्र' की धारणा और उसमें स्वयं की स्थिति की घोषणा स्पष्ट कर देता है कि विट्साक्सिस 'विराटता में लघुता' के क्रियागत प्रवाह को स्वीकार करते हैं। यह आधुनिक मनुष्य की 'लघुता' की वह स्वीकृति नहीं है जो उसे अपनी ही विराट, दानवीय निर्मितियों ने दी है अपितु समग्र सृष्टि के संदर्भ में जीवात्म के सम्बन्ध क्या है—इस जैसे मूलभूत प्रश्न से टकराने का अहसास है जिसमें अतिरिक्त छद्म नहीं है। स्थितियों की कोई परिगणना या भौतिक प्रसंगों में उसे यथार्थ मानने का आग्रह भी यहाँ नहीं है।

कविताओं में यह क्लासिकी वृत्ति केवल एक शैली ही नहीं है अपितु कविता की मूल ज़रूरत अर्थात् सही कविता से जुड़ी है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो कविताओं में ज्यादातर रूप के स्तर पर ही परिवर्तन हुआ है। सही कविता मनुष्य के लिए विज्ञान का विकल्प देती है—यद्यपि कविता की ऐसी कोटियाँ विरल हो गयी हैं तथापि विट्साक्सिस की कविता अपने क्लासिकी स्वभाव में इसी विरलता की उपस्थिति है। एक सही कविता चिन्तन और रचना—दोनों स्तरों पर मानवीय प्रश्नों से जुड़ी होती है, वह चाहे बाहरी संसार की

विसंगतियों को विषय बनाये या मनुष्य के अंतरंग से जुड़े—यह एक सामान्य-सी कसौटी है।

जागो ! सुदूर क्षितिज में दिन उग रहा है
पर्दों के पीछे
रोशनी मंद कदमों से चली आ रही है

यदि हम कहें कि यह एक किस्म का आशावाद है तो इसे अस्वीकार करना बहुत सरल काम नहीं है—चाहे कविता के एक से अधिक अर्थ या एक से अधिक व्याख्याएं या मंतव्यार्थ होते हैं—शब्दों की अर्थमय लय जिस सत्य को उद्घोषित करती है—वही एकांत लय कविता के पूरे अर्थ प्रसंगों को एक खास परिप्रेक्ष्य में सीमित भी कर देती है। इस विधि से जांचने पर यह एक किस्म का आशावाद है जो लम्बे आत्म-संघर्ष के बाद निष्कर्ष के रूप में झलकता है।

यकीन करो
मैं मुक्त हूं
तुम्हारे कारागार में।

'कॉस्मिक प्रिजन' में मनुष्य जितना मुक्त है ठीक उतना ही मुक्त वह परिवेश की कैद में भी है जिसे वह पूरी तरह जानता है। मुक्ति की यह आदिम जिज्ञासा—कहना चाहिए कि अनेक प्रकार की व्यवस्थाओं की जन्मदाता भी है। आज जब हम कविता के अर्थहीन पड़ जाने के 'बोध' से ग्रस्त हैं—यह सोचना कि कविता एक प्रकार का मूल विचार है जो परिवर्तन की मूल प्रेरणा का काम करता है, निश्चित रूप से कविता की भूमिका पर पुनर्विचार के लिए सामग्री जुटाता है। रित्सासिस की कविताएं—उनके विषय, उनकी मूल चिन्ता सारतः इसी सामग्री का एक हिस्सा है।

रित्सासिस की कविताओं के विषय बहुत ज्यादा नहीं हैं। उनमें 'विषयों' के प्रति लगाव कम है। यही कारण है कि वे किसी विशेष भूगोल की कविताएं नहीं लगतीं। उनमें सूचनाएं इतनी कम हैं कि आप उन्हें कहीं भी किसी भी भौगोलिक परिसीमा से जोड़ सकते हैं। एक अर्थ में वे उदार कविताएं हैं। 'उदार' कहना सिर्फ विषय की दृष्टि से ही सार्थक नहीं है बल्कि उन्हें 'मनुष्य की चिन्ता' की उदारता की कविताएं कहना अधिक उचित होगा।

कविता से जिस किस्म की अपेक्षा रखी जाती है उसमें शब्द अधिक

महत्त्व नहीं रखते—विश्वसनीय, अन्ध सत्य-निष्ठा से आवृत्त शब्द कविता का शब्द नहीं होता, वह व्यापार का शब्द होता है जिसका अर्थ और जिसकी दिशा पूर्ण रूप से निर्दिष्ट होती है। विट्साक्सिस की कविताओं को आधार बनाकर सहज ही कहा जा सकता है कि एक स्तर पर आकर कविता में शब्द अपनी सत्ता खो बैठते हैं। वे अर्थ की प्रतिच्छवियों में अनेकगामी होते हुए अपना पूर्वरूप स्वयं ही ध्वस्त कर देते हैं। विट्साक्सिस की कविताओं को इस संदर्भ में समग्रत: एक शब्दहीन प्रार्थना कहा जा सकता है—इसलिए कि यह शब्दहीन प्रार्थना मनुष्य की एक शिशु किलक है जिसमें वह स्वयं को जानता है—स्वयं अपनी अस्मिता को अर्थ देता है।

भारतीय विचारदर्शन की प्रतिच्छवियां या उनके गुणाधारों का जो आभार, स्वीकृति के रूप में विट्साक्सिस ने प्रकट किया है उस पर टिप्पणी करना आवश्यक लगता है, इसलिए नहीं कि विट्साक्सिस ने 'भारत' को आधार बनाया है, न इस सरलीकरण के बहाने कि विट्साक्सिस भारत के अतीत से प्रभावित हैं बल्कि इसलिए कि विट्साक्सिस ने पहली बार अर्थहीन लगने वाले भारत के 'अर्थ' के प्रति आभार प्रकट किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के भारतविदों की प्रेरणा से भारत में जिस किस्म का पुनर्जागरण लहराया था—वह अपने दौर में अर्थपूर्ण और अनिवार्य था। आज एक दूसरे ही कोण से, अधिक गहराई से भारत के अर्थ को जो दृष्टि स्पष्ट कर रही है—वह एक प्रेरणा, एक आधार बन सकती है बशर्ते हम भी उतने ही सजग हों—अतिवादियों की तरह प्रारम्भभंगुर नहीं, अपितु टूटी हुई विराट संस्कृति-धारा के अर्थ को पहचानने वाले सजग कवि। किसी कवि-कर्म की यही चरम अर्थवत्ता है।

विट्साक्सिस की कविताओं का अनुवाद करते हुए उनकी कविताओं की मूल प्रकृति की रक्षा का प्रयत्न काफी जोखिम भरा काम था क्योंकि उसमें थोड़ा भी हेर-फेर उनके मूलार्थ को खंडित कर सकता था। कवि द्वारा किये अनुवाद और फिर लम्बी चर्चाएं—ये दो आधार थे कि ये कविताएं अनुवाद में किसी किस्म का हस्तक्षेप नहीं लगेंगी।

—राजेन्द्र अवस्थी
—गंगाप्रसाद विमल

क्रम

गोधूलि मे	१
विश्वास न करना	२
तुम्हारी आंखें	४
बहुत देर बाद	६
तीन शब्द	७
स्वप्न	६
पतंगे की तरह	११
तितली	१२
सन्तोरिन	१४
बच्चों की दुनिया	१६
एक पत्ती के बहाने	१७
पिंजरे	१८
प्रश्नांतक	१६
आकांक्षा	२०
नाम-रूप	२२
मैं तुम्हें नहीं महसूस करता	२५
गवाक्ष	२७
तुम	२६
संवाद-स्तम्भ	३१
प्रतिबिंबन	३४

आग तापते हुए	३५
मोम द्रवित बूंदों की रूपाकृति	३६
अचीन्हे मार्ग	३८
चौराहे पर	४०
संवाद	४२
मैं कहां दोषमय था	४८

प्रश्नांतक



गोधूलि में

रेशमी बादलों के पीछे
वह अलौकिक गुलाबी अनार-सा चांद
लुका-छिपी खेल रहा था
वह धड़ाम से जा गिरा
क्षितिज के कोटर में ।

उसका अग्नि-सा हृदय, फट पड़ा खुले में
और तभी रोशनी के बीज
छिटक पड़े
बाहर छिटक पड़े
आसमान को भरते हुए
(चमचमाते, झपझपाते) तारों के बीच ।



विश्वास न करना

विश्वास न करना
अगर कोई कहे कि
तारागण
रात में चमकते है स्वर्णमय

इसका भी यकीन न करना
जब कोई तुम्हें कहे
कि जहाज
तटवर्ती रोशनी के लिए तड़पते है

बिलकुल विश्वास न करो—करना
अगर तुम्हें बताया जाय
कि पक्षी
जंगल में खुशी से चहचहाते हैं

कोई कहे तो यह भी न मानना
कि वर्फ़
शिशिर का दिकदान है

और यह भी स्वीकारना
जब कोई दावा करे
कि घास
ओस कणों के स्पर्श से जागती है।

पर विश्वास करना
जब तुम्हें बताया जाय
कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं।



तुम्हारी आंखें

ध्रुवीय जल-तालों की तरह गहरी
और हरी
आकांक्षा और स्वर्गिक द्वारों सी खुली
अजन्मे वसन्त-सी कोमल
तुम्हारी अबोध आंखों को मैं प्यार करता हूं।

जब गुस्से में तुम 'बरजती' हो
और झलकाना चाहती हो आंखों से
तब वे और ज्यादा दमकती हैं
हरे किन्तु अकाल प्रौढत्व की रोशनी में

तुम्हारे आंसू। बहने वाले बादल हैं
हरी घास में वसन्त की तरह
गुज़रते हुए
घास और कलियों की प्यास बुझाकर

उदात्त खेतों को अंकुरित करते हुए।
और तुम्हारी मुसकान
असंख्य स्वर्ण रश्मियों का कौतुक लाती है
जो दमकती हुई दुपहरी में
तारों भरी रात की गहराई खोलती है।



बहुत देर बाद

पास बहती हवा
फुसफुसाई
तुमने सोचने में देर कर दी।
आसमान में उड़ती चिड़िया भी
चहचहाई
बहुत देर बाद तुमने सोचा।

ओ भागते हुए वक्त
क्या तुम ठहर नहीं सकते
कुछ रुककर चलो
मैंने बहुत खोया है।

पर प्रतिध्वनि ने उत्तर दिया
'नहीं रुक सकते...बहुत देर हो गयी। बहुत देर हो गयी
नहीं रुक सकते।'



तीन शब्द

रात को टिमटिमाते हुए
तारे
क्या कहना चाहते हैं ?
झरने के उद्‌गम से
चलते हुए
जलकण क्या बुदबुदा रहे हैं ?

हवा क्या फुसफुसाती है
रात पसरने पर
और वर्षा क्या थपथपाती है
प्यासी और सूखी धरती पर ?

छोटी-सी तितली को
गुलवहार क्या गुनगुनाती है
और क्या कहती है मधुमक्खी । शर्मिन्
लिलाक के फूल को



स्वप्न

एक स्वप्न की तरह ।
सुगंध-सी
ठीक हवा की गमक जैसी
उद्विग्न किशोरी
तुम यहां से गुजरी हो
निष्कपट, वेपरवाह

तुम्हारी खिलंदडी आंखें
घोड़ों की जंगली आंखों की तरह है ।
वरजो और उनकी चमक छिपाओ
क्योंकि उनकी चमचमाने वाली रोशनी
मेरे रात के सपनों को उकसाती है ।

क्या है अगर वर्फ़ के फोहे
मेरे वालों को श्वेत वना दें



पतंगे की तरह

पतंगे खिचते है
उस रोशनी की मदमस्ती से
और मैं वैसा ही लौ के चारों ओर फड़फड़ाता हूं।

वे जलते अग्निकण सीधे भेदते हैं
मेरे नन्हे पंख
...पर वे वन जाते है
किरणों की छलनी।

घाव जितने जलते हैं अधिक
आशाओं का स्वर्ण-नद
उतना ज्यादा वहता है।



तितली

कुछ देर के लिए
जब वर्षा थम गई है
वह अपने पंख धीमे से
फड़फड़ाती है
और उड़ जाती है
गीली घास के ऊपर
आसमान की ओर।

वह जाती है ऊंचे
और ऊंचे
जब तक पंख नहीं थकते
और फिर
इन्द्रधनुष पर बैठ जाती है
विश्राम के लिए

कितनी वजनदार है
वह तितली
झुक जाता है
इन्द्रधनुष ।



सम्मोहिन

ओ भोज-वृक्ष
मैं अक्सर याद करता हूँ
अपने कैशोर्य का अंत
तुम्हारी पतली पत्तियों जैसा उगा

उनके अनगिनत हाथ
हमेशा घूमते हैं
हवा की प्यार भरी थपथपाहट के लिए
वे तड़पते हैं।

श्वेत पात चमचमाते हैं
तारों और चांद के नीचे
आसमान के नीचे
अचंचलता है।
निस्तब्ध।

धरती की नावों...
कोटरों के किनारों पर
मन्तोरिन के
किनारों पर।



बच्चों की दुनिया

मेरे बन्दर-पतंगे घूमो
फूलों के साथ।
इस गुनगुना समय में
सब कुछ नया है।

वह झरने की आवाज
चमचमाते पत्थरों की चमक।
जल-कुण्ड के पास
पाखियों का संगीत

और अब मुझे मिली है
गुलाब गुच्छों के बीच छिपी
एक ताजी कली

और वह कली फूटती है
तो मैं उसके अन्दर
देखता हूं सम्पूर्ण ब्रह्मांड।



चिनार की एक पत्ती के बहाने

जल-ताल आज विचलित नहीं था
चारों ओर की प्रकृति से
रोशनी को भी प्रतिबिंबित करता हुआ
जलवर्णों में तैराता।
स्लेटी शाखें, सफ़ेद बादल

लाल-नारंगी फूल
चांदी-सी तितलियां
ये सब तैरते हुए सपने थे
उस चमचमाते दर्पण में।

अचानक
एक सोयी हुई चिनार की पत्ती गिरी
और सब-के-सब दृश्यांकन
विलुप्त हो गये
जैसे डूब गये हों
लहरों के नीचे।



पिंजरे

उपदेश समाप्त हुए
संगीत भी मन्द हुआ...

चर्च-घंटाघर की खिडकी के करीब
अचानक पिंजरे खोल दिये गये
जैसा इस अवसर की यह प्राचीन
स्थापित परम्परा थी
और पागलपन में पंख फड़फड़ाते हुए
बाहर की ओर उड़ पड़े पक्षी।

किसी ने मुझसे पूछा
'क्यो...क्यों वे आसमान में
पक्षियों को बन्द कर देते है ?'
और मौन मैं
चुपचाप चला आया।



प्रश्नांतक

मैंने वह नीली लहर देखी है
किनारों पर आती है
मधुर स्पर्श जैसी कोमल
आत्मीयों जैसी नम्र
शान्ति के गीत गुनगुनाती हुई

मैंने देखी है लहर
काले फुफकारते हुए सर्प-सी
कभी पहाड़ की तरह बढ़ती हुई
और कभी कब्र की तरह
डूबती हुई।

बताओ सचमुच
यह लहर कैसी है ?



आकांक्षा

दिन धीमे से पसर रहा है
घास पर
जहां हम चले थे
कुछ बिलकुल विलग...और कुछ इतने साथ-साथ।

अचानक, तभी
बेहद उत्कंठ-खुले आसमान मे
एक बालचद्र हसहंसाया
नवजात और ताजा
—स्मृतियों की तरह—कल पैदा हुआ
चमकीला और कोमल
पहुच के बाहर स्वप्नों की तरह

मैंने चुपचाप एक इच्छा की
स्वर्णिम मुसकराहट के साथ बढती
इन स्मृतियों और सपनों को देखने की

याद करो।
दिन धीमे से बीत रहा है
कल फिर दूसरा चांद उगेगा
अधिक विकसित ..मुझे आशा है।



नाम-रूप

गोधूलि में
सुदूर
क्षितिज रेखाएं
एकाकार हो जाएंगी धुंध में
ओ आसन्न रात्रि
तुम्हे प्रतीक्षा करनी होगी
अपने तिमिरांकन की

वही जिसे तुम
सम्पूर्ण दिन अपने साथ लिये
भटकी हो। अपने हृदय में
सघन अवसाद के रूप में
अंधेरे की गहन छाया। अपने मानस में
एक आवद्ध ध्वनि
सुदूर घंटियों की।

चाहे तुमने खुद को
यह विश्वास कर भरमाया हो
कि तुमने
अपने हृदय की हर धड़कन में
उनकी अनुगूंजें नहीं सुनीं।
वे तुम तक आएंगी
और तुम निपट अकेले पड़ जाओगे

रात और तुम
और चतुर्दिक
सब कुछ सन्नाटे में डूब जाएगा...

ओह ! यह सब सहसा नहीं होगा
उसके पदचिह्न धीमे और थके होंगे
इसलिए कि यह तुम्हारे पदचिह्नों पर उतर चुके हैं
और हर उस जगह जाएंगे जहां तुम जा रहे हो

फूल और पक्षी
रंग और चुम्बन
गंध और गीत
सब कुछ
तुम्हारे साथ बांटेंगे।

जब सांझ उतरेगी
बहुत दूर
क्षितिज की धुंध में एकाकार होगी
यह रात तुम्हारे लिए अनजानी नहीं होगी।

पारदर्शी प्रकाश
यह भ्रमदायी छाया दूर कर देगा
जिसमें यह लिपटी है

निर्भय हो !
बस सिर्फ़ इसके अवशेष और इसकी संज्ञा
बदल जाएगी।



अकेलेपन : मैं तुम्हें नहीं महसूस करता

नही महसूस करता हूं तुम्हें
अकेलेपन
इतने पर भी
कि घने जंगल के सन्नाटे में हूं
न लेटे हुए धीमी बहती नौका में
न समुद्र में। भूखा और निपट नंगा

तुम्हें नहीं महसूस करता
यहां तक
कि अवसाद के घने क्षणों में। पीड़ा में
न अपने अकेले अंधेरे कमरे में
घोर गरीबी और हताशा में

पर महसूस की है तुम्हारी सर्द सांस
बहुत उत्कंठित

लोगों की भीड़ के बीच
...और जब खुशनुमा दिन अभी मुसकरा रहे होते हैं
तुम हमेशा चले आते हो दबे पांव।



गवाक्ष

अन्दर पहुंचते ही
मुझे बताया गया
कि 'खिड़की के करीब वाली जगह
किसी के लिए नियत है।'

इसलिए, इस पूरी यात्रा में
वे दृश्य, पुल और स्टेशन
मैंने तुम्हारी आंखों से देखे।

उस तयशुदा सीट पर बैठने
कोई नही आया
और मैं भी साहस नही जुटा पाया।

तुम्हारे ही चेहरे पर
मैंने मैदानी इलाकों की मुर्दनी देखी

उन इलाकों की शाश्वत शान्ति
नीचे व्याप्त शून्यता का भय
पुलों की बंधी हुई सुरक्षा
स्टेशनों पर उत्तेजक चहल-पहल
उन लोगों की आकांक्षाएं और उनके अवसाद।

अब जब यात्रान्त में हम गन्तव्य पर
पहुंच ही रहे हैं
मैं खुश हूं कि मैंने नियत जगह लेने का
जोखिम नही उठाया
क्योंकि इस यात्रा में
मैंने अपेक्षित से भी कहीं अधिक देखा है।



तुम

विशाल सरोवर की गहराई से
मैंने एक चन्द्रकण उठाया
और उसे आकाश की ओर फेंक दिया
वह प्रदीप्त होकर चमके अकेला ही
रात के तिलिस्म में
और उसका नाम है तुम।

मैंने एक अज्ञात सागर की यात्राएं की हैं
जहां प्रेम के लिए लहरें कंपकंपाती हैं
और नावें, प्यासे अधरों-सी
फिसलती है एक-दूसरे की खोज में
...सुदूर यथार्थ के किनारों से दूर
और वह संज्ञा हो तुम।

मरुथल की रेत में
मैंने फूलों का एक जंगल रोपा है।
उनके रंग अदेखे हैं। दूसरे इन्द्रधनु से लिये गये
पाटल इतने कोमल हैं। ठीक एक परी के पंख की तरह
और सुरभि इतनी गहरी
जैसे वसुधरा की श्वास हो पतझर की पहली वर्षा में
और वह नाम हो तुम।

एक शिखर पर चढ़कर
मैं चन्द्रमा की ओर चला
एक बादल पर सवार होकर मरीचि की ओर
... ...
चांद बहुत ऊंचा था
सूर्य बहुत तप्त
मैंने एक ही किरण अन्तस्थ की
और वह नाम हो तुम।



संवाद-स्तम्भ

नंगे रूपाकार की
एक पतली रेखा
मैदानी इलाके की फैली हुई सतह में
गतिहीन
भारतीय रेतीले क्षेत्रों में

ये रेखाएं कहां से आती है ?
उनके गन्तव्य कहां हैं ?
सुदूर
अनजाने क्षेत्र से
वे क्षितिज की सीमा रेखा पर चढ़ जाती है
छोटी छायाओं वाली रूपाकृतियां
वे धुंध के आवरण में लिपटी
जैसे-जैसे वे पास आती हैं तो
विशाल रूपाकारों में बदल जाती हैं

और ओझल होने से पूर्व
फिर बौनों में बदल जाती हैं
दूसरे किनारों से परे
पाताल की गहराई में।

वे एक पिरामिड की आकृति में बदलती हैं और
जहां कहीं भी उनमें से एक स्थित है
वहीं—एक शिखर है।
अपनी क्षीणाकार भुजाओं
मुड़ी हुई तारों को झुलाते हुए
एक-दूसरे का अनुगमन करती हुई
अतिशयोक्ति में
शाश्वत तृपा में अनंत का आलिंगन करती हुई।

पर्वतारोहियों की तरह
एक-दूसरे को मजबूती से बांधे हुए
वे हमेशा खड़े रहते हैं
ताकते रहते है उस दूर शीर्ष को
जो अभी तक दृश्यमान नहीं होता।

उन पर दौड़ता है
बिजली की गति से
कोई रहस्यपूर्ण संदेश। एक दुनिया के
न बोले जाने वाले शब्द
जो नियत हैं
एक अर्थ के लिए
स्वयं चेतन न होते हुए भी
स्वयं कभी वे नहीं जान पाएंगे।

अपनी भुजाओं की
खुली-फैली मुद्रा में
वे तारों को मजबूती से थामे रहते हैं
और प्रतीक्षा करते हैं

शायद
अबाबीलों या सारसों के
एकत्र होने की
या किसी थके पाखी के
आने की और आराम से बैठने की।
या ज्यादा-से-ज्यादा
—तेजी से गुजरती किसी हवा की
कि प्रतिध्वनि के रूप में
सुदूर तारों की कंपन
गुनगुनाहट हो
पक्षियों के लिए विश्राम
या संप्रेषित करते हुए
समीरण की कंपकंपाहट।



प्रतिबिंबन

धरती पर गिरे किसी तारे की तरह
चमकती है सुबह की एक बूंद ओस
कोमल कुमुदिनी के पाटल पर
अपने लघुमय तराशे हुए कटोरे में
वह समग्र आसमानी रंग को
प्रतिबिंबित करता, झकझोरता है।

देखो
पानी की एक छोटी-सी बूद
अपने में अबंधित आकाश को लिये हुए है
आलोक का एक विशद् आलिंगन बना हुआ
वह अनन्त को अपने में समोये हुए है।



आग तापते हुए

सुनहरी चिनगारी से
मुझे ईर्ष्या नहीं होती
उसकी तीखी चमक उछलकर
—आग के एक खाली बीज में
धुंए की बांझ-झुर्री में बदल जाती है
या वह आगे बढ़ता है
राख के खाकी भंवर में
ठीक उस तारे की तरह
उदित होता है जिसे अस्त होना है।

मुझे ईर्ष्या होती है
कि
वह
अपने समग्र भड़कीलेपन की चमक में
खत्म होता है।



मोम-द्रवित बूंदों की रूपाकृति

आलोक में सिक्त और उत्कट
स्पष्ट मोम को बूंदों जैसे पारदर्शी
शब्द
मेरे हृदय के आलोक-कक्ष से जलते हुए
टपकते है
कागज के कोरेपन पर।

पिघली हुई मोम की तरह
जो गाढ़ी होकर ठिठक-सी पड़ती है
मोमबत्ती के मुहाने पर गिरकर
ठीक शब्द भी वैसे ही ठोस बन जाते है
और अपनी चमक खो देते हैं
जब प्राणहीन कागज को छूते है।

खुरदरे, आकृतिहीन समूह
स्वप्न बनते हैं

और आलोकित करते हैं
शेष जमे रह जाते हैं अन्दर
जमाव की गुफा में।

छिपे हुए शब्द
वहां तुम्हारा इन्तजार कर रहा है
अनुजा आत्मा
तुम इसे स्वीकारो और रूपाकार में ढालो
प्राण रूप देने वाली अपनी हथेलियों की
गर्माहट में।

इसे हिम-श्वेत वर्तिका में स्थापित करो
और अपनी आत्मा की चिनगारी दे
आलोकित करो
जो यह था वैसा ही पूर्ववत।

हमारे स्वप्नों को उस कांति में संसिक्त होने दो
और
साथ-साथ
हमें अनुगमन करने दो
उन स्वर्णांकित राजमार्गों पर ..!



अचीन्हे मार्ग

नंगे पांव, बादलों को ओढ़े
मैंने यात्रा शुरू की।
रात की जलसतहों पर
मैं चला
एक नक्षत्र से दूसरे तक
एक चिनगारी से दूसरी तक
सावधानी से कि फिसल न पड़ूं
अराजकता के अंधेरे खड्ड में
गिर न पड़ूं
मैं नहाया हूं
अनेक स्वर्णमय प्रतिबिंबों में
शीतल आग के प्रपातों में

[क्षणभंगुर, पीड़ा-रहित जगमगाहट के फव्वारे
धर्मोत्सव की अहानिकारक आतिशबाज़ी जैसी।]

अनन्त के आसमानी दृश्यालेख की ओर
जाने वाले ईथरीय वीथि के बीच
रक्तिमवर्णी सूर्य के प्रकाश के नीचे...

विशाल चमकीले नक्षत्र-मत्स्य के
समीप से गुज़रते हुए
जो कि बहुत आलस्य से घूमता है
उसके स्पर्शानुभव के अवयव
विलुप्त शब्दों के प्रस्तर-चूर्ण पर
ठीक अलौकिक समुद्र की तलहटी में
चमकते हैं।

आकाश-गंगाओं में मैं चकरा गया
तीव्रतम चक्रवात वहा ले गये
अपने जलते हुए शीतल जमाव पर
और मैं फेंक दिया गया
श्वास-रहित
भयानक प्रतिच्छायाओं के पीछे
उन विशालाकारों के
जिससे आलोक के प्रति मेरी तृष्णा
आकाशगंगा-पथों में नदी तटों पर
दबाई जाय।

फिर नीचे एक उतराई की ओर मैं चला
जो रोहिणी नक्षत्र की ओर जाती थी

ध्रुव तारे को तो
मैं एक दृष्टि भी नहीं देख सका
पर किसलिए ?

"प्राणलोक के शताधिक द्वार हैं। उनमें से एक प्रबुद्धि की ओर खुलता है। उसी एक मार्ग पर चलकर अमरत्व प्राप्त किया जाता है किन्तु दूसरे मार्ग, जिनकी भिन्न दिशाएं हैं, मृत्यु का कारण बनती हैं।"

(कठोपनिषद्—२:३:१६)



चौराहे पर

सकुचाते हुए मैं खड़ा हूं
ओ ! स्वामी
एक बहुमुखी राह में।
चारों ओर
—विकीर्ण करने वाले जाल है
उनमें से हर एक
एकाकी पथों के दिग्दर्शक है।
सुदूर पर्वत-शिखर की ओर
वे लहरदार रूप से मुड़ जाते हैं
हल्की नीली धुंध के आवरण में लिप्त।
जैसे वे चढाव में रेंग रहे हों
इस कांक्षा में कि
स्वर्ग छूने वाले शिखर को चूमेंगे।

वहां...वहां और फिर वहीं
असंख्य शिखरों पर
असंख्य आकृतियां
प्रतीक्षारत हैं...।
क्या स्वर्गारोहण धारावाहिक होगा
शिखर से घाटी
फिर—फिर एक बार नये शिखर पर
वहां...वहां और फिर वहीं...

क्या मैं हमेशा के लिए
एक याचक भिक्षु हूं
जो हर भिक्षा में
एक ग्रास पा लेता है
और अपनी क्षुधा कभी
तृप्त नही करता।
क्या मुझे सदैव मनन करना होगा कि
मेरी कांक्षा की वस्तु
एक खंडित दर्पण के बीच है ?

'वे अकेले रास्ते कही नही ले जाते'
—उसने एक फुसफुसाहट में जाहिर किया
वे आते हैं
वे ले जाते है
हर तरह के चिह्न, आकृतियां और आवाज़ें
सुदूर स्थिति हल्की नीली धुंध से परे
'देखो मत, पर्वत शिखर के परे
एक-एक कर कभी नहीं। सब एक बार चढ़ो
उस गतिहीन स्वर्गारोह में
तुम कहीं खड़े न होगे। स्वयं एक चौराहा हो।'

मैं गरजती हुई, दहलाने वाली दीप्तिमान रात के साथ चलता हूं। मैं प्रकृति की शक्तियों और शाश्वत के साथ चलता हूं। मैं आत्मा की आग उठाये हुए हूं।"

(ऋग्वेद १०. १२५ : १)

"जैसे पूरी तरह जलती हुई आग से सहस्रों चिनगारियां फैलती हैं ठीक आग-जैसी ही, वैसे ही शाश्वत अनेक रूपाकृतियों के जीव-जगत की सृष्टि करता है।"

(मुण्डकोपनिषद् ११. १. १)

मात्र वही, पहले वह चमकता है, सब चीज़ें तत्पश्चात। उसके इच्छोत्सव के रूप में ही सब चीज़ें अलग-अलग चमकती हैं।

(कठोपनिषद् ११. २ : १५)



संवाद

उसका कथन—
जो कुछ भी शुरू हुआ
वह मैं नहीं हूं
क्योंकि मैं आदि से भी पूर्व था

जो कुछ भी अन्तर्मुक्त है
वह नहीं हूं मैं
क्योंकि मैं तो अन्तरिक्ष की तरह अनन्त हूं।

तुम जो कुछ देख सकते हो
मैं वही नहीं हूं
क्योंकि मैं तो स्वयं चाक्षुप हूं

जो कुछ हो गुज़रता है
वह मैं नहीं हूं
मैं तो कभी आया ही नही हूं।

जो भी कुछ चला जाता है
वह मैं नही होता
क्योंकि मैं कभी नही जाता।

तुम्हें मैं कहां पाऊंगा ?

उसने कहा

तुम मुझे कभी नहीं पा सकते
तुम विवश हो। तुम्हें मुझे खोजना ही पड़ेगा

फिर मैं तुम्हें कहां खोजूं ?

प्रत्युत्तर मिला

छलांग लगाओ
अथाह गहराई में
अपने ही अन्तस् की झील में
और खोजो
चिपचिपे पेड़ों के नीचे चिपकने वाली मिट्टी में
आग के पत्थर में
वहीं शैवाल के आवरण के बीच
कुछ ही लोग हैं

जो पा सकते हैं;
और वे भी
अंधेरे में टटोलते हुए महसूस करते हैं।

कई बार तो वे भी
भ्रमित हो जाते हैं
और प्राप्तव्य की जगह गीली मिट्टी
या धरती का गिलगिला पिण्ड पा लेते हैं।

...और जब तुम उसे पा लोगे
—अगर ऐसा कर सको, उसे पहचान सको
तो उसे स्वीकार करो सम्पूर्ण विश्वास के साथ
और धैर्य की रगड़ से उसे गरमाओ
जब तक कि चिनगारी न फूटे।

...और पूर्वकथित रूप में, तुम्हारे चारों ओर
लपटें लपलपाएंगी
यहां...वहां...और वहां
एक-दूसरे से बिलकुल अलग, दूरस्थ
फिर भी एक-जैसी।
उस आद्य चिनगारी के हजारों रूप हैं
हर एक कांतिमय
अपने ही ढंग की अस्तित्ववान
अनुपम फिर भी अंगुलियां जलाने वाली
फैलती है अपनी ही रोशनी के पथ में
राख के बीच लकड़ियों के गोलाकार में
सुलगती हुई भीतरती आग
नये अन्वेषण की अंकुरित कांक्षा का यह खाद्य है
तब
जैसे एक सम्पूर्ण घने स्वप्न में

धुंध के प्रतिबिंब जैसा
तुम्हें शायद मिले
मेरी धुंधली-धुंधली-सी झलक।
मात्र वही
रात की अथाह झील में ?

उसने घोषणा की
यहां या वहां
अन्दर या बाहर
केवल शब्द

तुम्हारे लिए हों !
पर, मेरे बारे में क्या ?
उसने कहा
तो फिर, चढ़ो !
कोई भी पहाड़
जितनी भी ऊंचा क्यों न हो
वहां तक !
जहां सब कुछ स्तब्ध है...
और अपने साथ ले जाओ
सितार, मृदंग और वीणा...
सब प्रकार के वाद्य।
और प्रतीक्षा करो
हवा बहने की
बादलों के इकट्ठे होने की
गर्जना की

और जैसे ही आग की शीतल कम्पन
गिरने लगे
स्वर्ग का मंडोपा

और ब्रह्माण्ड नाद की विभीषिका
खीच लाएगी
अलौकिक दिव्यता का रोप
हर अन्त से अन्त तक
आकाश को थरथराती हुई।
सितार, वीणाएं और तुम्हारे चारों ओर के मृदंग
घात-प्रतिघातों की झनझनाहट
वीणा की सुमधुर तान
मृदंग का
खाली मर्मान्तक स्वर
एक के ऊपर एक।
प्यार का एक गीत
और सितार
मात्र परी के पखों की
एक कोमल फड़फड़ाहट।

और जैसे ही निराश अंधकार
रोशनी के विरुद्ध संघर्ष करेगा
उधर भयानक गर्जनाएं और इधर लपटें।
सब कुछ एकमेक हो जाएगा।
और हर चीज़ आकाश में या धरती पर
प्रतिध्वनित होगी
अधिक-से-अधिक वह
दीखने पर पृथक् स्वर-लहरी है
और फिर भी
वह समानार्थक होते हुए भी
लग सकता है भिन्न...
और इतने पर भी
वही कंपन
वही अधिकार

वही असंख्य मुखी लपटें, आकृतियां और आवाजें
लेकिन फिर भी 'एक' !

तब
जैसे-जैसे स्वप्न गहराता है
मैं समझ जाता हूं कि मैं तुम्हें कभी नहीं पा सकूंगा
इतने पर भी मैं तुम्हें खोजूंगा हमेशा-हमेशा...!

"मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय।"
....
....
सर्व कर्मफलत्यागं ततःकुरु यतात्मवान् ॥"
(भगवद्गीता १२ : ८, ६, १०, ११)

"संन्यासस्तु महाबाहो.........न चिरेणाधिगच्छति—"
(भगवद्गीता ५ : ६)

"अद्वेष्टा सर्वभूताना.....................स मे प्रिय."
(भगवद्गीता—१२ : १३, १४)

"मैं ही छल, प्रभाव, निश्चय, सात्विकभाव अर्थात प्रयत्न हूं"
(भगवद्गीता १० : ३६)



मैं कहां दोषमय था...

घुटनों के बल आज रात
स्वामी मैं तुम्हारी शरण में आया हूं
विश्रान्त आत्मा और बोझिल हृदय से

मैंने उन सब मार्गों का अनुसरण किया
जो आपने बताये
पर मैं वहां कभी नही पहुंचा
कहां दोप था
कहां से मैं चिह्न भूल गया

आपने कहा
'आंखें बंद करो, देखो'
और यही मैंने किया !

आसपास गगन अंधकारपूर्ण हो गया।
और फिर कभी ऊषित् नहीं हुआ
अंधेरे की वही रहस्यात्मक चमक
प्रकाश की अनुगूंज वैसी ही ठिठकी रही धुंधली
और मैं भयासन्न हो आया।

घनी सदाबहार लताओं ने मेरा रास्ता
बाधित किया। और कांटेदार झाड़ियों ने
सारा मार्ग एक-एक कर सघनता में डुबोया
क्या ? आपने कहा कि
मेरी आंखे पूरी तरह बन्द न थीं ?
और छलने वाली रोशनी
अवधान की कमी के कारण रेंगकर घुस गयी ?

सुदूर से कोई प्रतिध्वनि
व्यतीत के प्रतिचुंबनों के सुरभित स्पर्शानुभव
मधुर उत्तेजनाएं और कोमल स्वप्न
और स्मृतियां...
मैं इन स्मृतियों को कैसे भगाता
वे एक रेहड़ की तरह
दुपहर को किसी छायादार पेड़ के नीचे विश्रान्ति के लिए
पड़े रहे
पलकों के पीछे। जहां पहुंचा ही नही जा सकता।

आपने कहा—
"अगर आन्तरिक प्रकाश में सफलता नहीं मिली
तो दुष्कर मार्ग अपनाओ।"

मैंने फिर पथरीले और चट्टानी चढ़ाइयों के
संकेतों का अनुकरण किया
और दलदल में जा फंसा
बहुत गहरे
रेगिस्तान की प्यासी रेत में
जो पलटती रहती है
गतिहीन...'

क्या...आप कहते हैं
अकेले रास्तों पर अधिक बाधाएं नहीं हैं।
बहुत मुश्किल है घाटियों के रास्तों पर
सीधे चढ़ना
जहां मानव-समूह भीड़-भड़क्का करते हैं
फिर गिरते हैं
पैरों के झगड़ने से नहीं
बल्कि अशान्त आत्मा के कारण...

अपने रास्ते के अदृश्य अधकूप से
कैसे किनारा कर सकता हूं
धूल के बावजूद उससे
जो कुचलने वाले खुरों को उठाता है।

आपने कहा
'अगर तुम अपने को अदूषित किये ही
अलग नहीं रख सकते
तो अंधेरे की रोशनी...
अगर अचंचल नहीं बने रह सकते
और जिन्दगी के उभार के बीच
तब...प्यार करो...बांधो...खुद को दो...।'

परिपूर्ण रूप से खुली—मैंने अपनी बांहें पसार दीं
मैं दूसरे के दुःख से रोया
दूसरों के घाव से मेरा खून बहा
और मैंने सबके सहभागी के रूप में कोशिश की
—यह कितना कठिन था
एक खुशी जो मेरी नहीं...।
क्या—आप कहते हैं

मेरा प्यार बहुत संकीर्ण था ?
उसकी पहुंच से बाहर भी बहुत लोग रह गये
—फूल और पक्षी और पेड़ और तारे
और अगर वे सब भी नहीं
तो किसी अकेली आग की चिनगारियां
एक अकेले सूरज की
किरणों का बहाव !

मेरा हृदय बहुत ही छोटा था
समुद्र के वक्ष जैसा नहीं
जो अपने में सभी नदियों, वर्षाओं
और ओस-बूंदों को
समग्र जल को समो लेता है
चाहे वह जहां से भी क्यों न आता हो।

पिता—
मैंने पूर्ण कोशिश की
और अगर मैं गलत रहा
—एक आदमी के रूप में
तो मैं फिर से शुरू कर सकूंगा।

क्या
यह सच है
कि मैं वहां पहुंच गया हूं
इतने पर भी मुझे नहीं मालूम।